Dr. Vandana Suman
Associate professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara
M. A Semester - 1 Philosophy CC-04
Indian and western Ethics

1 Moore: The intrinsic and extrinsic value"

मूर ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपिया एथिका' के प्रथम अध्याय के अंतिम हिस्से में इस बात की चर्चा की है कि जिन वस्तुओं में आंतरिक मूल्य है, वह उनमें किस मात्रा में है। मूर ने अपनी किताब में स्पष्टता से उन दो प्रश्नों के बीच अंतर करने का प्रयत्न किया है, जिनका उत्तर देने का दावा नैतिक दार्शनिकों ने हमेशा किया है, लेकिन जिन्हें उन्होंने, मूर के अनुसार, लगभग हमेशा एक-दूसरे से या अन्य प्रश्नों से मिला दिया है। पहला प्रश्न इस प्रकार का है:—

1. किस किस्म के वस्तुओं का अपने-आप में अस्तित्व होना चाहिए? (या कौन-सी वस्तुएँ साध्य के रूप में अच्छी या उनमें आंतरिक मूल्य है?); जबकि दूसरा प्रश्न इस प्रकार का है:—

2. किस किस्म के कर्मों को हमें करना चाहिए? (या कौन से कर्म उचित या कर्तव्य है?)

मूर के अनुसार, "साध्य के रूप में अच्छा क्या है?" यह सबसे बुनियादी नैतिक प्रश्न है, क्योंकि "साधन के रूप में अच्छा क्या है।" इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए पहले प्रश्न का उत्तर देना जरूरी है। "साध्य के रूप में अच्छा क्या है?" मूर के

लेकिन मूर ने इस प्रश्न के सही उत्तर में इस बात की सही तुलना भी शामिल है कि जिन वस्तुओं में आंतरिक मूल्य है, किस वह किस मात्रा में है। इस विषय की तुलना में, मूर के अनुसार एक सैद्धांतिक कठिनाई है, जिसके कारण अक्सर "आंतरिक मूल्य" और "साधन के रूप में अच्छा" को एक मान लिया गया है।

मूर के विचार में ऐसी बहुत सारी वस्तुएँ हैं जिनमें आंतरिक मूल्य है, कई ऐसी वस्तुएँ भी हैं जो निश्चित तौर से बुरी हैं और इससे भी अधिक संख्या में ऐसी वस्तुएँ हैं जो अंतिम रूप से तटस्थ मालूम देती हैं। इन तीनों वर्गों की वस्तुएँ किसी एक सम्पूर्ण इकाई या अवयवी (whole) का अंग हो सकती हैं। जिसके दूसरे अंगों में इस वर्ग की और अन्य दोनों वर्गों की दूसरी वस्तुएँ भी शामिल रह सकती हैं। ऐसे किसी सम्पूर्ण का भी आंतरिक मूल्य रह सकता है।

मूर के अनुसार, जिस विरोधाभास (Paradox) की ओर ध्यान देना जरूरी है, वह यह है कि ~~ऐसे~~ ऐसे किसी सम्पूर्ण के मूल्य का उसके अंगों के मूल्य के जोड़ या योगफल के साथ कोई नियमित अनुपात (regular proportion) नहीं रहता है। दो अच्छी वस्तुओं के बीच ऐसा

सम्भव हो सकता है कि अंगों द्वारा बनाए गए सम्पूर्ण का मूल्य उनके अंगों के योग से बहुत बड़ा है। इसी तरह एक अच्छी और एक तटस्थ वस्तु द्वारा बनाए गए सम्पूर्ण का मूल्य उस एक अच्छी वस्तु के मूल्य से बहुत बड़ा हो सकता है इसी तरह दो बुरी वस्तुएँ या एक बुरी वस्तु और एक तटस्थ वस्तु मिलकर एक ऐसा सम्पूर्ण बना सकती है, जो अंगों की बुराई के योग से कहीं बदतर हो। यह भी सम्भव मालूम देता है कि दो तटस्थ वस्तुएँ मिलकर कोई ऐसा सम्पूर्ण बनाएँ जिसमें बड़ी मात्रा में सकारात्मक या नकारात्मक मूल्य हो। अलग-अलग दृष्टांतों में हम चाहे जो भी निर्णय लें, मूर के अनुसार यह सिद्धान्त स्पष्ट है, यह नहीं मान लेना चाहिए कि किसी सम्पूर्ण का मूल्य उसके अंगों के मूल्य के योग के बराबर होगा।

मूर ने इस सिद्धान्त को एक उदाहरण द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। मूर के अनुसार यह सत्य मालूम देता है कि किसी सुंदर वस्तु की चेतना का बहुत बड़ा आंतरिक मूल्य है। जबकि अगर किसी सुन्दर वस्तु की किसी को चेतना न हो, तो फिर उसका बहुत कम मूल्य होगा, बल्कि आम तौर से उसका

कोई मूल्य नहीं माना जाता है। किसी "सुंदर वस्तु की चेतना" एक सम्पूर्ण है, जिसके दो अंग हैं: एक सुंदर वस्तु, और दो, उसकी चेतना। केवल चेतना, इस सम्पूर्ण का भी अंग रहती है जब कभी भी हमें किसी वस्तु की चेतना होती है। इनमें से कई सम्पूर्णों का बहुत कम मूल्य होता है और कुछ तटस्थ या बुरे भी हो सकते हैं। सिर्फ चेतना से किसी सम्पूर्ण का मूल्य बहुत बढ़ नहीं जाता है। चेतना का आंतरिक मूल्य चाहे जो भी हो, जिस सम्पूर्ण का वह अंग है उसका मूल्य चेतना के मूल्य और उस वस्तु के मूल्य के अनुपात में नहीं रहता है। इसलिए, मूर के विचार में "सुंदर वस्तु" की चेतना" को एक ऐसे सम्पूर्ण का उदाहरण माना जा सकता है, जिसका आंतरिक मूल्य उसके अंगों के आंतरिक मूल्य के योग से कहीं अधिक बड़ा है।

इस तरह मूर के अनुसार, ऐसे सम्पूर्ण हैं, जिनमें यह गुण है कि उनका मूल्य उनके अंगों के मूल्यों के योग से अलग है लेकिन, ऐसे सम्पूर्णों के और उनके अंगों के बीच के संबंध को स्पष्टता से पहचाना गया है और न ही उन्हें

अलग नाम दिया गया है। मूर के विचार में, यहाँ पर दो बातें विशेष तौर से ध्यान देने योग्य हैं :

(i) किसी ऐसे अंग का अस्तित्व उस सम्पूर्ण के अस्तित्व की अनिवार्य शर्त है जिसका वह अंग है। किसी साधन और कोई ऐसी वस्तु, जो उसका कार्य (effect) है, के बीच के संबंध को बतलाने के लिए भी ठीक इसी भाषा का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन इन दो दृष्टांतों में बहुत ही महत्वपूर्ण अंतर है। अंग उस सम्पूर्ण का अंग है, जिस के अस्तित्व की वह अनिवार्य शर्त है, जबकि साधन उस सम्पूर्ण का अंग नहीं है। साध्य के अस्तित्व के लिए साधन की जो अनिवार्यता है, वह मात्र प्राकृतिक और कारणात्मक अनिवार्यता है। अगर प्रकृति के नियम कुछ दूसरे हुए होते, तो उस साध्य का अस्तित्व उस साधन के अस्तित्व के बिना भी हो सकता था। साधन के अस्तित्व का कोई आंतरिक मूल्य नहीं है। अगर साधन पूरी तौर से नष्ट हो जाए, तो भी उस साध्य के आंतरिक मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं आएगा। जैसे हासिल करने के लिए वह अभी एक अनिवार्य शर्त है। लेकिन किसी सम्पूर्ण और उसके अंग के बीच का सम्बन्ध इससे अलग है। यहाँ पर अंग के

FEBRUARY '20						
M	T	W	T	F	S	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	

MARCH '20						
M	T	W	T	F	S	S
30	31					1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

APPOINTMENTS

अस्तित्व के बिना सम्पूर्ण के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। इनके बीच जो अनिवार्य सम्बन्ध है, वह प्रकृति के नियमों से स्वतंत्र है। अगर किसी सम्पूर्ण के बारे में कहा जाता है कि इस के अस्तित्व में आंतरिक मूल्य है, तो उस सम्पूर्ण के अस्तित्व के अंतर्गत अंग का अस्तित्व भी शामिल है। अगर अंग को हटा दिया जाए, तो इसके बाद जो बचता है, उसके बारे में यह नहीं कहा जा रहा है कि उसमें आंतरिक मूल्य है। लेकिन अगर साधन को हटा दिया जाए, तो भी वह बचा रहेगा, जिसके बारे में कहा जा रहा है, कि उसमें आंतरिक मूल्य है। फिर भी (2) यह सम्भव है कि किसी अंश के अस्तित्व का अपने-आप में साधन से अधिक आंतरिक मूल्य हो, क्योंकि ऐसी कि चर्चा की जा रही है। मूर के अनुसार किसी सम्पूर्ण का मूल्य उसके अंगों के मूल्य के योग के बराबर नहीं होता है। किसी मूल्यवान सम्पूर्ण के अंग का आंतरिक मूल्य दोनों ही स्थितियों में बिल्कुल एक रहता है, चाहे वह सम्पूर्ण का अंग हो, या न हो। अगर इसका अपने-आप में कोई

29 SUNDAY

मूल्य सम्पूर्ण में भी उसका, उसका आंगिक मूल्यवान मूल्य रहता है, अंग होने पर भी उसका प्रकार उसका, लेकिन नहीं जाता। और आंगिक सम्पूर्ण का मूल्य अपने आप में कोई सम्पूर्ण का अंग होने पर भी किसी मूल्यवान कोई आंतरिक मूल्य नहीं रहता है।

मूर के अनुसार किसी सम्पूर्ण और उसके अंगों के बीच के इस विशेष संबंध को कोई नाम नहीं दिया जाता है। कोई नाम देना उपयोगी होगा। मूर के विचार में ऐसा एक नाम है, जिसका इस संबंध के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है लेकिन तभी जबकि उसे उसके कुछ 'वर्तमान उपयोगों' से अलग कर दिया जाए। हीगेल से प्रभावित दार्शनिकों ने "आंगिक सम्पूर्ण" (organic whole), "आंगिक एकता" (organic unity) और "आंगिक सम्बन्ध" (organic relation) जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया है।

मूर के अनुसार जब कहा जाता है कि कोई वस्तु "आंगिक सम्पूर्ण" है, तो उसके आम तौर से तीन अर्थ लिए जाते हैं: पहला, कि उसके अंगों के बीच वैसा ही सम्बन्ध है जैसा साधन और साध्य के बीच रहता है। दूसरा, इस अर्थ में कि सम्पूर्ण और उसके अंगों के बीच ऐसा

सम्बंध है कि सम्पूर्ण से अलग अंग निरर्थक हैं या उनका कोई महत्व नहीं है। तीसरा, उस अर्थ में जिस अर्थ में मूर इसका इस्तेमाल करना चाह रहे हैं, यानी सम्पूर्ण और इसके अंगो के बीच ऐसा सम्बंध है कि सम्पूर्ण का मूल्य अंगों के मूल्य के योग के बराबर नहीं है।

मूर का प्रस्ताव है कि "आंगिक सम्पूर्ण" का इस्तेमाल सिर्फ तीसरे अर्थ में किया जाए।"